ईशावास्यमिदं सर्वम्

डॉ॰ राकेश मणि त्रिपाठी,
व्याख्याता, ब्राह्मी विद्यापीठ महाविद्यालय, लाडनू (राज॰)
प्रो॰ (डॉ॰) सोहन राज तातेड़
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

संसार में मनुष्य जन्म प्राप्त करना ही बहुत दुष्कर है, क्योंकि चौरासी लाख योनियों में जो सत्कर्म करता है, वहीं मानव योनि प्राप्त कर सकता है। इसमें शास्त्र ही एक मात्र प्रमाण है। मानव जीवन प्राप्तकर जो सत्कर्म नहीं करता, वह जीवन को वैसे ही नष्ट कर देता है, जैसे कोई व्यक्ति अपने गले में पड़ी हुयी माला को सर्प समझकर फेंक देता है। सनातन धर्म के अनुसार संसार के कण–कण में ईश्वर का वास है। सभी प्राणी समान हैं। सभी में एक ही आत्मा प्रवाहित हो रही है। अतः जो अपने प्रतिकूल हो उसे दूसरों के साथ भी नहीं करना चाहिए– "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।"

सृष्टि के संचालन और व्यवस्था के लिए चार वर्णों का सृजन हुआ– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। सभी वर्णों के अलग–अलग कार्य निर्धारित किए गए। कार्य की दृष्टि से भेद भले ही हो, किन्तु मानव मात्र की दृष्टि से किसी में कोई अन्तर नहीं है। ब्राह्मण का कार्य पठन–पाठन, क्षत्रिय का कार्य रक्षा, वैश्य का कार्य व्यापार तथा शूद्र का कार्य सेवा निर्धारित किया गया। यह व्यवस्था और संगठन की दृष्टि से आवश्यक था। समाज के विकास की दृष्टि से आवश्यक था। समाज में ब्राह्मणों का उत्तरदायित्व गुरूतर था। चाण्क्य ने लिखा है "ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है। स्वराज्य में रहता है और अमृत होकर जीवित रहता है।" कहने का तात्पर्य यह है कि ब्राह्मणत्व एक सर्वभौम सत्ता है। उसका अनादर करके कोई भी राष्ट्र विकास नहीं कर सकता। उसकी अवहेलना करने का अर्थ है इस की अवहेलना, ज्ञान का तिरष्कार। जहाँ ज्ञान का तिरष्कार होता है, वह समाज या राष्ट्र जड़ हो जाता है और एक दिन उसका विनाश निश्चित है।

ज्ञान को सुरक्षित रखने का कार्य ब्राह्मणों ने किया है। प्राचीनकाल में शिक्षा की गुरूकुल परम्परा थी। शिष्य गुरूओं के मुख से सुन–सुनकर कण्ठस्थ कर विद्या को सुरक्षित

रखते थे। धीरे–धीरे समय के परिवर्तन के साथ–साथ शिक्षा व्यवस्था में भी परिवर्तन हुआ, पाठ्यक्रम में भी परिवर्तन हुआ, जिससे शिक्षा–व्यवस्था पूर्णतया परिवर्तित हो गयी। आज के युग में अर्थ–पोषित विद्या को महत्त्व दिया जा रहा है। इसी का परिणाम है कि प्राच्य विद्याओं के पढ़ने और पढ़ाने वालों की संख्या नगण्य होती जा रही है। प्राच्य विद्याएं मनुष्य को संस्कारी और सदाचारवान् बनाती है।

योग्य शिक्षक ही सदाचार का ज्ञान कराता है। शिष्यों में अनुशासन और अपने पैरों पर खड़े होने की प्रेरणा वही देता है। कहा भी गया है –

गुरूर्वाच्छति शिष्येषु, विकसेदात्मशासनम्।

न वाच्छति भवेयुस्ते, नित्यं संप्रेरिताः परैः।।

मानव जीवन में अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनों आती है, किन्तु दोनों में समभाव रखना चाहिए। सुख में न तो आवश्यकता से अधिक आह्लादित और द ुःख में न अधिक दुःखी होना चाहिए। मनुष्य की सहनशीलता की यही कसौटी है –

अनुकूलत्वं लब्धं, प्रतिकूलत्वं क्वचित पुनर्लब्धम्।

समता नहि हातव्या, एतत् धर्म सनातनम्।।

इसी बात की गीता में भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार कहते हैं– यह सम्पूर्ण संसार मुझसे इसी प्रकार अनुस्यूत है जैसे धागे में मोती – 'सूत्रे मणिगणाः इव।' भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि सम्पूर्ण सांसारिक जंजाल को छोड़कर मेरी शरण में आओ, मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूंगा –

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुभः ।।